पेरिस
१० जून, २००४

संदेश संख्या – ६८

मुक्त गगन में विचरण

देर शाम एक व्यक्ति दक्षिणी–पश्चिमी इंग्लैण्ड में लैण्ड्स एण्ड के समुद्रीतट पर भ्रमण कर रहा था । समुद्र की उत्ताल तरंगें अपने सौंदर्य एवं प्रचण्डता के साथ तट से टकरा रही थीं । वह समुद्र से आ रही तेज हवा के विपरीत दिशा में भ्रमण कर रहा था । तभी अचानक उसे बोध हुआ कि उसके और आकाश के बीच कुछ भी नहीं है । यह व्यापक शून्यता और इसका अनायास बोध ही ध्यान का सार है । इस ध्यान में सहचरों की उपस्थिति एवं उनके वार्तालाप से कोई बाधा नहीं पहुँच रही थी । किसी के भी प्रति प्रतिरोध का न होना तथा अन्तर्विरोधों एवं पाखण्डों से युक्त अनावश्यक इच्छाओं, बाध्यताओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं से मुक्त होना ही जीवन में पूर्णता के साथ होना है, शून्यता में विचरण करना है ।

समुद्री–पक्षियों के बीच टहलते हुए उसे प्रेम के असीम सौन्दर्य का अनुभव हुआ जो न तो उसके भीतर था और न ही बाहर, बल्कि सर्वत्र व्याप्त था । हवा का एक विलक्षण झोंका उसके साथ–साथ पूरे भूखंड को आवेष्ठित किए था । यह कदाचित् प्रज्ञा का झोंका था जिसके फलस्वरूप उसका शरीर हर प्रकार के द्वैत से पूर्णतः मुक्त हो गया था और एक अद्‌भुत दिव्यता का प्रस्फुटन हो रहा था । ध्यान की भूमि में ही इस दिव्यता के फूल खिल सकते हैं । विभेदकारी चित्तवृत्ति में यह भूमि उपलब्ध नहीं होती क्योंकि इसमें दुर्भाग्य से असीम संभावनाओं से युक्त मानव मस्तिष्क एक छोटे दायरे में सिमट कर रह जाता है। सीमित क्षेत्र में असीम का अवतरण संभव नहीं है । असीम के अवतरण हेतु उपयुक्त भूमि आकांक्षाओं और अनुभवों के तल पर उपलब्ध नहीं हो सकती । अध्यात्म के क्षेत्र में आकांक्षायें और अनुभव तो ऊर्जा का अपव्यय मात्र हैं । भौतिक जगत में अनुभव अवश्य ही दैनिक कार्यों को पूरा करने में उपयोगी होता है, लेकिन ध्यान के क्षेत्र में अनुभव अर्थात् पूर्वधारणाओं पर आधारित प्रतिक्रियायें, चिति–शक्ति (दिव्यता) के अवतरण में बाधक होती हैं । दिव्यता तो शान्त मस्तिष्क में अस्तित्व का बोध और शून्यता का चरम आनन्द है । मस्तिष्क की इस अवस्था में एक अद्‌भुत लय होती है जो अनुभव के मानसिक अवशेषों पर आधारित मन्तव्य या प्रतिक्रिया से मुक्त होती है ।

जो अभिव्यक्त है उसका आदि और अन्त भी है । इसलिए उस 'असीम', जिसका न आदि है, न अन्त, को अनिवार्य रूप से अनभिव्यक्त ही होना चाहिए। अनभिव्यक्त, जो पूर्ण चैतन्य अर्थात् सत्य है, को किसी भी तरह से उधारी ज्ञान के ढाँचे में या भाषा की सीमा में या ग्रीय, प्रजातीय, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विश्वास–पद्धतियों के बन्धनों में या परम्पराओं, अनुबन्धनों एवं दृष्टिकोणों की परिधि में बाँधा नहीं जा सकता । मानव जाति के चिरस्थायित्व एवं अमरता की अन्तहीन खोज के क्रम में अनभिव्यक्त (भगवत्ता) को भी खोजने का प्रयास करना एक अक्षम्य भूल है । वास्तव में, व्यक्तिगत 'आत्मा' और इसके द्वारा किए जाने वाले 'पाप', इसका 'उद्धारक', इसकी 'मुक्ति' तथा 'ईश्वर' और उसकी 'न्याय–व्यवस्था', 'पुरस्कार' एवं 'दण्ड' की योजनायें आदि सभी इसी खोजीपन के परिणाम हैं जो, मानव–मन को हमेशा उत्तेजित, चिन्तित और पीड़ित रखते हैं । मानव समाज में व्याप्त अन्याय, असमानता, असन्तुलन, भूख और भय के ये ही मूल कारण हैं ।

जीवन जीने भर के लिए आवश्यक आधारभूत आवश्यकताओं को छोड़कर और किसी चीज की इच्छा न रखते हुए अभिव्यक्त अर्थात् संसार के चमत्कार एवं रहस्यों, वृक्षों के सौन्दर्य एवं मंगलमयता, पुष्पों के प्रस्फुटन, सुन्दरवन (भारत) के जंगल के शाही शेर, केप–टाउन (दक्षिण अफ्रीका) के समुद्री तट पर की ह्वेल मछली, जिब्राल्टर के मुहाने पर नाचते हुए डॉल्फीन, स्विट्जरलैण्ड एवं हिमालय (भारत) के हिम–आच्छादित पर्वतों, चिली में प्रशान्त महासागर की विशालता आदि का निरपेक्ष दर्शन और सर्वत्र प्रातःकाल में चिड़ियों के स्वरमाधुर्य का श्रवण अपने आप में प्रशान्त मस्तिष्क की पूर्णता का परमानन्द एवं आशीर्वाद है जिसमें अनादि–अनन्त चिति–शक्ति अर्थात् अनभिव्यक्त (भगवत्ता) के लय की झलक मिलती रहती है और तब अभिव्यक्त (संसार) एवं अनभिव्यक्त (भगवत्ता) के बीच का द्वैत भी समाप्त हो जाता है । यही ध्यान है । यह किसी भी मानव शरीर में घटित हो सकता है, चाहे वह किसी विशिष्ट पद्धति से योगाभ्यास करता हो या नहीं । इस ध्यान के घटित होने के लिए वस्तुतः किसी व्यक्ति द्वारा कुछ करने या न करने की जरूरत नहीं होती । अज्ञेय भगवत्ता को जानने के लिए विभेदकारी चित्तवृत्ति (मन) द्वारा किया गया कोई भी प्रयास उस अनभिव्यक्त भगवत्ता को अपवित्र करना मात्र है ।

हर हर हर हर,
बम बम बम बम ।।